E-ISSN-2584-2870 https://doi.org/10.65833/dbs.2026.343

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
श्रीरघुनाथकीर्तिपरिसरः, देवप्रयागः
देवभूमि–सौरभम्
Devabhūmisaurabham
E-ISSN 2584-2870

Vol 3 Issue 1 Jan-June 2026 Devabhūmisaurabham International Journal of CSU Shri Raghunath Kirti Campus Devprayag Uttarakhand India

बौद्धशिक्षा-व्यवस्था: संस्थागत, जनतान्त्रिक और समावेशी शिक्षा का दार्शनिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. विकास सिंह
सह आचार्य, तुलनात्मक धर्म एवं सभ्यता केंद्र
जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय
सांबा, जम्मू और कश्मीर
संपर्क सूत्र +91-9711570933
ईमेल - vikas.ccrc@cujammu.ac.in

सारांश:

यह शोधपत्र प्राचीन भारत की बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था के संस्थागत, नैतिक एवं समावेशी स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ***बौद्धों ने प्राचीन भारत में संस्थागत एवं जनतान्त्रिक तरीके से बिना किसी भेदभाव के शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा प्रतिमान स्थापित किया जो आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का आधार है। सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों – मठों, विहारों एवं महाविहारों की स्थापना के द्वारा धर्म, दर्शन सहित लौकिक विषयों को भी अपने अध्ययन-अध्यापन का आधार बनाया।*** "बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय" के आदर्श पर आधारित यह व्यवस्था शील, सम्यक् आचरण और बौद्धिक विकास को केन्द्र में रखती थी। इसमें जाति एवं लिंग-भेद के अभाव के साथ स्त्रियों को भी शिक्षा और संघ में समान अवसर प्राप्त थे। नालन्दा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान-

विनिमय को प्रोत्साहित किया। यह अध्ययन बौद्ध शिक्षा के उद्देश्यों, प्रक्रियाओं, संस्थागत संरचना तथा गुरु-शिष्य संबंधों का विवेचन करते हुए आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के लिए इसके प्रासंगिक आयामों को स्पष्ट करता है।

कूट शब्द: बौद्ध शिक्षा, महाविहार, समावेशिता, शील, जनतंत्र, नालन्दा।

भूमिका

प्राचीन भारत की शिक्षा-व्यवस्था विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं और सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव में विकसित हुई। वैदिक काल में शिक्षा मुख्यतः आश्रम-केन्द्रित और वर्णाधारित थी, जिसके कारण समाज के व्यापक वर्ग, विशेषतः स्त्रियाँ और शूद्र, शिक्षा से वंचित रह जाते थे। उत्तर-वैदिक काल में कर्मकाण्ड और पुरोहितवाद के प्रभाव से शिक्षा का स्वरूप और अधिक सीमित हो गया। ऐसे समय में बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था एक वैकल्पिक एवं प्रगतिशील मॉडल के रूप में उभरकर सामने आई, जिसने शिक्षा को सार्वजनीन, सुलभ और समावेशी बनाने का प्रयास किया।

तथागत बुद्ध द्वारा प्रतिपादित "बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय" का सिद्धांत केवल धार्मिक उपदेश तक सीमित नहीं रहा, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी एक नवीन दृष्टिकोण का आधार बना। बौद्धों ने मठों, विहारों और महाविहारों के रूप में संगठित शिक्षण संस्थानों की स्थापना की, जहाँ धर्म-दर्शन के साथ-साथ चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, तर्कशास्त्र आदि लौकिक विषयों का भी अध्ययन कराया जाता था। इस प्रकार शिक्षा को केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन न मानकर समग्र व्यक्तित्व विकास का माध्यम बनाया गया।

बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता इसकी जनतांत्रिक संरचना थी, जिसमें प्रवेश, अध्ययन और आचार-विचार के नियम विनय के आधार पर निर्धारित होते थे। इसमें जाति, लिंग

अथवा सामाजिक स्थिति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। स्त्रियों को भिक्खुणी संघ के माध्यम से शिक्षा और स्वतंत्रता के समान अवसर प्राप्त हुए, जो उस समय की सामाजिक संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था।

नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला जैसे महाविहारों ने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था ने शिक्षा को संस्थागत, नैतिक एवं वैश्विक स्वरूप प्रदान करते हुए आधुनिक शिक्षा के कई मूलभूत सिद्धांतों की नींव रखी।

उद्देश्य:

1. बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था के मूल स्वरूप और सिद्धांतों का विश्लेषण करना।
2. इसके संस्थागत एवं जनतान्त्रिक चरित्र का अध्ययन करना।
3. शिक्षा में समावेशिता के आयामों को स्पष्ट करना।
4. बौद्ध शिक्षा के नैतिक एवं दार्शनिक आधारों का परीक्षण करना।
5. आधुनिक शिक्षा में बौद्ध शिक्षा के योगदान का मूल्यांकन करना।

शोध प्रश्न:

1. बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था का संस्थागत स्वरूप किस प्रकार विकसित हुआ?
2. इसमें समावेशिता और जनतांत्रिक तत्व कैसे अभिव्यक्त होते हैं?
3. बौद्ध शिक्षा में नैतिकता और शील की क्या भूमिका है?
4. यह व्यवस्था आधुनिक शिक्षा के लिए किस प्रकार प्रासंगिक है?

शोध पद्धति:

यह अध्ययन गुणात्मक तथा ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें पालि त्रिपिटक, विनयपिटक, मिलिन्दपञ्ह, थेरीगाथा, विसुद्धिमग्ग जैसे प्राथमिक स्रोतों तथा अम्बेडकर, नरसु, अल्तेकर आदि विद्वानों के द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षाएवं शोध अंतराल:

पूर्ववर्ती अध्ययनों में बौद्ध शिक्षा के नैतिक पक्ष, विश्वविद्यालयों की संरचना तथा बौद्ध दर्शन के प्रभाव का उल्लेख मिलता है। अम्बेडकर, नरसु तथा अन्य विद्वानों ने बौद्ध शिक्षा की समावेशी प्रकृति और स्त्री-स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया है। तथापि अधिकांश अध्ययन आंशिक हैं और समग्र संस्थागत विश्लेषण का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत शोध में बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था के संस्थागत, नैतिक, सामाजिक एवं वैश्विक आयामों का समन्वित अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। विशेषतः इसे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से देखने का अभाव विद्यमान है, जिसे यह शोध पूरा करने का प्रयास करता है।

विवेचन

सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा बहुजनसुखाय बहुजनहिताय के आधार वाक्य से समन्वित जिस धम्मचक्र का प्रवर्तन सारनाथ के सुरम्य मृगदाय वन से आरम्भ हुआ, उसकी गति सहस्रों वर्षों से जनसामान्य को लाभान्वित करती हुई अजस्र और अनवरत प्रवाहमान है। भारत सहित एशिया-यूरोप आदि महाद्वीपों के देशों के करोड़ों-अर्बुदों लोगों को भगवान बुद्ध की देशनाएँ सदैव उद्धार करती रहती हैं और ज्योतिपुंज के रूप में उनका मार्गदर्शन करती रहती हैं। छठी शताब्दी ई.पू. तक भारतीय संस्कृति की वैदिक धारा में व्याप्त कर्मकाण्ड, भोगवाद, वेदवाद, देववाद, यज्ञवाद, पशुबलि, सामाजिक बिखराव जैसी अनेक जटिलताओं ने एक सहज एवं सर्वसुलभ धर्म की आवश्यकता को जन्म दिया।

इस युग में कई प्रकार के स्वतंत्र आचार्य हुए जिन्होंने कई सम्प्रदाय चलाये जैसे निगंठनातपुत्त का जैन, पूरणकस्सप का अक्रियावादी, मक्खलि गोसाल का नियतिवादी अर्थात् आजीवक (भाग्यवादी), अजितकेसकम्बलिन् का उच्छेदवादी, पकुधकच्चायन का नित्यवादी, संजय वेलट्ठपुत्त का सन्देहवादी सम्प्रदाय।[1] काल के साथ अन्य सभी सम्प्रदाय समाप्त होते चले गए किन्तु तथागत बुद्ध का धम्म सदियों तक भारत को पोषित करता रहा। भारत की बहुविध संस्कृति और सभ्यता का निर्माण करते हुए बौद्ध धर्म ने ऐसे आयाम स्थापित किए जो भारत के आधार बन गए।

वैदिक काल में जहाँ शिक्षा प्रणाली ने एक राष्ट्रीय तथा धार्मिक स्वरूप ग्रहण किया था, उत्तर-वैदिक काल में पुरोहितवाद एवं कर्मकांडीय पक्ष ने शिक्षा सहित विभिन्न संस्कारों पर ब्राह्मणों का एकाधिकार स्थापित कर दिया जिससे समाज का एक बड़ा वर्ग शूद्र एवं स्त्री उपेक्षित कर दिए गए। भगवान बुद्ध की शिक्षाएँ ऐसे समय में घाव पर शीतल लेप की भांति जनसामान्य को आकर्षित की तथा हर्यक, शिशुनाग, कण्व, नन्द, मौर्य, सातवाहन, कुषाण, गुप्त, वर्धन आदि विभिन्न राजवंशों ने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण में अपनी सुगति खोजते हुए अखण्ड भारत के विशाल भू-भाग की सेवा की।

ऐसे परिप्रेक्ष्य में बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था एक वैकल्पिक और परिवर्तनकारी प्रतिमान के रूप में उभरकर सामने आई। वैदिक शिक्षा व्यवस्था के वर्णानुसार शिक्षण कार्य के स्थान पर बौद्धों ने न केवल भारत को अपितु पूरी दुनिया को सार्वजनिक एवं जनतांत्रिक पद्धति का एक ऐसा आदर्श दिया जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक शिक्षा-व्यवस्था का आदर्श बना हुआ है। उन्होंने ज्ञान को किसी वर्ग-विशेष की संपत्ति न मानकर जनसामान्य के कल्याण का साधन माना।

[1]सिंह, विकास, *मिलिन्दपञ्ह में भारतीय संस्कृति,* दिल्ली: विद्यानिधि, 2016, पृ. 53

"बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय" का सिद्धांत बौद्ध शिक्षा-दर्शन का आधार बना, जिसने शिक्षा को सामाजिक न्याय और नैतिकता से जोड़ दिया।[2]

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य

आरम्भिक दौर की बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में आध्यात्मिक विकास पर अधिक जोर न देकर नैतिकता अथवा शील पर ही ध्यान अधिक दिया जाता था। मानवीय जीवन के आधार पंचशीलों के पालन करने के लिए, भिक्खुओं को निर्देशित अष्ट एवं दस शीलों पर विशेष बल दिया जाता था। सामान्यतः पंचशीलों में प्रथम शील प्राणीमात्र की हिंसा से विरत रहने के लिए प्रेरित करता है, दूसरा शील अदत्तादान तथा चोरी से विरत रहना सिखाता है, तृतीय शील काम मिथ्याचार अर्थात् व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा दी जाती है, चौथे शील से बुद्ध मिथ्याभाषण से विरत रहने की शिक्षा देते हैं और अन्तिम शील के माध्यम से बुद्ध ने सभी प्रकार की मदिरा एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा प्रदान की है।[3]

शीलों के महत्त्व को बौद्ध साहित्य में रेखांकित किया गया है। शीलों से युक्त धीर मनुष्य कीर्ति तथा सुख पाता है। वह जहाँ भी जाता है वहाँ वह सुखी रहता है।[4] शील मानव का अनुपम बल, उत्तम शास्त्र, उत्तम अलंकार तथा अद्भुत आवरण है। शील मजबूत बांध है। यह सर्वत्र फैलने वाली अनुत्तर सुगंध तथा उत्तम लेपन है। यह उत्तम किनारा है। यह उत्तम पथ का आधार है। यह एक ऐसा वाहन है जिससे सर्वत्र जाया जा सकता है।[5]शील के भूषण से भूषित एक भिक्खु अर्थात् भिक्षु जितनी शोभा पाता है उतनी मोती तथा मणियों से विभूषित राजा भी नहीं पाता।[6]

---

[2]दीघनिकाय, 3/10

[3]*दीघनिकाय,* 3/10

[4]थेरगाथा, 618

[5]थेरगाथा, 614-17

[6]विसुद्धिमग्ग, 1.9

आरम्भिक दौर में नैतिक चरित्र से लेकर व्यक्तित्व के विकास के लिए शीलों के परिपालन पर विशेष ध्यान था। जब शीलवान भिक्खु धम्म प्रचार के लिए निकलता था तो उसकी धम्मरश्मियों से कोटिशः लोगों का आकर्षित होना स्वाभाविक था। शनैः-शनैः बौद्ध संघ बढ़ने लगा और विभिन्न सम्राटों ने तेल्हाड़ा, नालन्दा, तक्कसिला, सोमपुरा, ओदन्तपुरी, विक्रमशिला आदि अनेक विश्वविद्यालयों का सृजन किया जहाँ विनयपिटक के नियमानुसार शिक्षक एवं छात्रों के आचरण को ध्यान में रखते हुए बौद्ध शास्त्रों और दर्शन का विकास हुआ और बौद्ध धम्म-दर्शन विश्व के जनसामान्य को लाभान्वित करने के लिए सर्वत्र फैला।

शिक्षण संस्थान एवं प्रक्रिया

वैदिक शिक्षा जहाँ व्यक्तिगत स्वरूप लिए हुए थी, वहींबौद्ध शिक्षा संस्थागत स्वरूप लिए हुए थी। वैदिक गुरुओं द्वारा वर्णानुसार अपने आश्रमों में शिक्षा दी जाती थी। स्वतन्त्र रूप से घरों में भी ब्राह्मण लोग शिक्षा देते थे। *मिलिन्दपञ्ह* में शैल नामक ब्राह्मण के तीन सौ छात्रों का उल्लेख मिलता है।[7]ब्राह्मणों द्वारा धन लेकर वेद पढ़ाने केसन्दर्भ *मिलिन्दपञ्ह* में मिलते हैं।[8] बौद्ध शिक्षा का आधार व्यक्तिगत गुरू या आश्रम न होकर के बड़े-बड़े संस्थान थे। महाविहार, संघाराम, विश्वविद्यालय जैसी ईकाइयों ने समय के साथ स्वरूप ग्रहण किया। तेल्हाड़ा (बिहार), तक्कसिला (पाकिस्तान), नालन्दा (बिहार), बल्लभी (गुजरात), विक्रमशिला (बिहार), ओदन्तपुरी (बिहार), नदिया (बंगाल), जगद्दलपुरी (बांग्लादेश), कांचीपुरम् (तमिलनाडु), ललितगिरि(उड़ीसा), नागार्जुनकौंडा (आंध्र प्रदेश),शारदा महाविहार/ शारदा पीठ (कश्मीर), मान्यखेत (कर्नाटक), उज्जैनी (मध्य प्रदेश), सिरपुर (छत्तीसगढ़), मथुरा (उत्तर प्रदेश), जगन्नाथ महाविहार (उड़ीसा), भाब्रू महाविहार (राजस्थान) आदि बौद्ध काल के प्रमुख शिक्षण संस्थान हैं। ये शिक्षण संस्थान

---

[7] *मिलिन्दपञ्हो, 4/3/10, पृ. 136*

[8] *मिलिन्दपञ्हो, 1/1/8, पृ. 7*

चाहरदीवारी से घिरे हुए होते थे। सभी शिक्षण संस्थानों में पूजा स्थल, प्रशासनिक भवन, पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष, आवासीय कक्ष पृथक्-पृथक् होते थे।

सद्गृहस्थों के दान पर ही बौद्ध शिक्षा पुष्पित और पल्लवित हुई जिसे कालांतर में राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालयों का निर्माण कार्य विभिन्न सम्राटों ने समय-समय पर करवाया। पाल वंश के शासकों ने सर्वाधिक विश्वविद्यालयों का निर्माण कार्य करवाया। आवास से लेकर भोजन-वस्त्रों सहित चिकित्सा की व्यवस्था निःशुल्क थी जो विभिन्न बौद्ध पर्वों एवं उपोसथों पर उपासक-उपासिकाओं द्वारा दान में मिली सामग्री से सुचारू चलती थी। अनेक गाँवों का राजस्व भी प्रत्यक्षतः इन महाविहारों को सम्राटों द्वारा दान किया जाता था और राजकोषों से भी सदैव महाविहारों के लिए मुक्तहस्त से दान मिलता था।

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था का आदर्श मानवीय गरिमा को सम्पुष्ट करते हुए दुःखनिवृत्ति का मार्ग खोजना था। सामनेर के रूप में सर्वप्रथम बौद्ध शास्त्रों का गंभीरता से अध्ययन अपेक्षित था जिसके तहत थेरवादी साहित्य पालि भाषा में और महायानी साहित्य संस्कृत भाषा में पढ़ाया जाता था। बौद्ध धर्म की दार्शनिक शाखाओं सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार तथा माध्यमिक का विशेष अध्ययन; पूर्व पक्ष के रूप में वैदिक दर्शन की मीमांसा, वेदांत, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक धाराओं सहित आयुर्विज्ञान, चिकित्सा, रसायनशास्त्र, खगोलशास्त्र, गणितशास्त्र आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन-अध्यापन इन महाविहारों में होता था।

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था वैदिक शिक्षा की तरह केवल मौखिक परम्परा पर आधारित नहीं थी, अपितु इसमें विभिन्न ग्रन्थों को स्मृतिमय बनाने के लिए और उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए लेखन पर भी बल दिया गया। नालन्दा विश्वविद्यालय में पुस्तकालय के तीनों रत्नरंजक' 'रत्नोदधि' एवं 'रत्नसागर' भवनों में अनुमानतः 3 लाख पाण्डुलिपियाँ थीं।

प्रव्रज्या और उपसंपदा संस्कार

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में दो संस्कार बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे – प्रव्रज्या और उपसंपदा। शिक्षा प्राप्त करने वाला कोई भी बालक इन दोनों संस्कारों से समन्वित जरूर होता था। प्रव्रज्या संस्कार से आशय है कि शिक्षा प्राप्ति के लिये घर छोड़कर बौद्ध मठ, महाविहार अथवा विश्वविद्यालय जाना। सामान्यतः यह संस्कार महाथेर के निर्देशन में होता था जो उस मठ अथवा महाविहार का सबसे बड़ा भिक्खु होता था। काषाय चीवर धारण करके, सिर मुड़वाकर बालक शरणत्रय[9] का उच्चारण करता था और प्रव्रज्या के बाद उसे श्रामणेर (सामनेर) कहा जाता था और इस अवसर पर नाम भी बदल दिया जाता था। श्रामणेर के रूप में उसे बौद्ध साहित्य का अध्ययन कराया जाता था। अपने गुरु की सेवा के साथ ही दस शीलों का व्रत लेता था।[10] बौद्धों का प्रव्रज्या संस्कार वैदिकों के उपनयन संस्कार के समानांतर विकसित हुआ। उपनयन से स्त्री एवं शूद्र वंचित थे, प्रव्रज्या संस्कार में इस प्रकार का जातीय एवं लैंगिक भेदभाव नहीं था।

बीस साल से ऊपर अथवा 12 वें प्रव्रज्या वर्ष में श्रामणेर का उपसम्पदा संस्कार होता था, जिसके बाद वह भिक्खु बन जाता था। कोई भी व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके वापस उपासक के रूप में लौट सकता था और सद्गृहस्थ जीवन में त्रिशरण और पंचशीलों का पालन करके रह सकता था। अनेक सामनेर गृहस्थ धर्म में लौटने की अपेक्षा उपसम्पदा कराके भिक्खु बनना पसंद करते थे और बुद्धसासन की सेवा में संलग्न हो जाते थे। उपसम्पदा संस्कार बौद्ध मठों या विहारों के समस्त भिक्खुओं का एक उत्सव होता था। 'सामनेर' भिक्खु के स्वरूप में हाथ में भिक्षापात्र तथा कंधे पर चीवर लेकर अन्य भिक्खुओं को वंदन करके बैठ जाता था। सभी भिक्खु जनतांत्रिक ढंग से बहुमत के आधार पर निर्णय लेते थे कि वह उपसम्पदा का अधिकारी है अथवा नहीं। उपसम्पदा प्राप्त भिक्खु बौद्ध मठ का स्थायी सदस्य स्वीकार कर लिया जाता था।

गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य

---

[9] *खुद्दकपाठ,* 1

[10] सिंह, विकास, *मिलिन्दपञ्ह में भारतीय संस्कृति,* दिल्ली: विद्यानिधि, 2016, पृ. 156

विभिन्न बौद्ध विश्वविद्यालयों एवं महाविहारों में शिक्षा आवासीय स्वरूप लिए हुए थी अतः शिक्षार्थी और आचार्य का एक ही परिसर में विभिन्न खण्डों में रहना होता था। ऐसे में दोनों के लिए ही नियम-उपनियम विनयपिटक के अनुसार निर्धारित किए गए। मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि योग्य आचार्य के गुणों को शिष्य के द्वारा अपनाना चाहिए। शिष्य के प्रति आचार्य के पच्चीस कर्त्तव्य[11] होते थे, जो हैं-

- आचार्य को शिष्य के विषय में सदैव ध्यान रखना चाहिए।
- उसको कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य का सदैव ध्यान रखना चाहिए।
- किसमें सावधान रहे और किसमें नहीं- का उपदेश देना चाहिए।
- उसके शयनादि के बारे में ध्यान रखना चाहिए।
- रुग्णावस्था में उसका ध्यान रखना चाहिए।
- भोजन में क्या पाया है क्या नहीं इसका भी ध्यान रखना चाहिए।
- उसके विशेष चरित्र के बारे में जानना चाहिए।
- भिक्षा पात्र में जो मिले उसे बांट कर खा लेना चाहिए।
- उसे सदा उत्साह देते रहना चाहिए।
- किसके साथ जाना है- का उपदेश करना चाहिए।
- किस गांव में जाना चाहिए- के बारे में बताना चाहिए।
- किस विहार में जाए इसके बारे में बताना चाहिए।
- उसके साथ गप्प नहीं करना चाहिए।
- उसके दोषों को क्षमा कर देना चाहिए।
- पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिए।
- बिना किसी अवकाश के पढ़ाना चाहिए।

[11] *मिलिन्दपञ्हो,* 4/5, पृ. 76

- उससे कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए।
- उसे सब कुछ बता देना चाहिए।
- विद्या से इसे पुनर्जन्म दे रहा हूँ- ऐसा विचार कर पुत्रवत् स्नेह करना चाहिए।
- शिष्य अपने उद्देश्य से न फिसले इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।
- शिष्य को सभी शिक्षाओं को देकर बड़ा बनाना चाहिए।
- उसके साथ मैत्री भाव रखना चाहिए।
- आपत्ति पड़ने पर उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिए।
- सीखे हुए को सिखाने में चूकना नहीं चाहिए।
- धर्मच्युति होने पर उसकी रक्षा करनी चाहिए।

बौद्धों में सामणेर (छात्र) की जीवनचर्या नियमों से बंधी हुई थी जिसे हम विभिन्न पालि ग्रन्थों में इतस्ततः देख सकते हैं। *मिलिन्दपञ्ह* से ज्ञात होता है कि गुरु को प्रणाम करना, अनुचित शंकायें न करना, परिवेण में झाड़ू लगाना, गुरु के मुख प्रक्षालन हेतु जल तथा दान्त साफ करने हेतु दातुन यथास्थान रखना इत्यादि श्रामणेर के कर्त्तव्य हैं।[12] संघ द्वारा बनाए गए विनय के सभी नियमों का परिपालन करते हुए प्रातः भिक्षाटन करना सामणेर का कर्त्तव्य था। अकादमिक वातावरण में रहते हुए सामणेरों को दस शीलों (*खुद्दकपाठ,* 2) का पालन करना अत्यंत आवश्यक था। ये नियम हैं –

- प्राणीमात्र की हिंसा से विरत रहना
- बिना दिए कोई वस्तु ग्रहण करने से विरत रहना
- व्यभिचार से विरत रहना
- झूठ बोलने से विरत रहना
- मादक पदार्थों से विरत रहना
- विकाल भोजन से विरत रहना

[12] *मिलिन्दपञ्हो,* 1/1/11, पृ. 11

- नृत्य, गायन एवं वादन से विरत रहना
- माला, गन्ध, लेपन, आभूषणादि से विरत रहना
- ऊँचे आसनों पर शयन करने से विरत रहना
- सोना, चाँदी,हीरे, जवाहरात जैसी बहुमूल्य वस्तुओं का दान लेने से विरत रहना

बौद्ध शिक्षा-व्यवस्था में छात्र तथा अध्यापकों के सम्बन्ध मधुर, शीलवान, श्रेष्ठ आचरण से युक्त, आध्यात्मिक एवं मूल्यपरक थे। छात्रों की यदि बात की जाए तो चीन के प्रसिद्ध योगाचारी ह्वेन्सांग अपने दार्शनिक प्रश्नों के शमन के लिए नालन्दा के छात्र बनें। कोरिया से हे चो एवं चीन से ही फाह्यान एवं इत्सिंग के उदाहरण इतिहास प्रसिद्ध हैं। विक्रमशिला के आचार्यों द्वारा तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार प्रथित है। शीलभद्र,धर्मपाल,चंद्रपाल,गुणमति और स्थिरमति जैसे प्रखर दार्शनिक आचार्यों से समन्वित नालन्दा; आचार्य रक्षित,विरोचन,ज्ञानपाद,बुद्ध,जेतारि,रत्नाकर शान्ति,ज्ञानश्री मित्र, रत्नवज्र और अभयंकर की विद्वता से प्रथित विक्रमशिला तथा वहाँ के यशस्वी आचार्य अतीश दीपंकर ने 200 ग्रंथों की रचना की तथा तिब्बत में बौद्ध धर्म स्थापित किया। यदि शिक्षक एवं छात्रों के अनुपात पर बात की जाए तो नालन्दा में पाँच छात्रों पर एक शिक्षक वहीं विक्रमशिला में तीन छात्रों पर एक शिक्षक नियुक्त था जो आधुनिक शिक्षण व्यवस्था के लिए एक स्वप्न मात्र है। नालन्दा एवं विक्रमशिला दोनों ही विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षा के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जहाँ प्रत्येक द्वार से प्रवेश करते समय परीक्षा होती थी। नालन्दा में छात्रसंघ चुनावों का जिक्र भी प्राप्त होता है। जहाँ छात्र अपना नायक चुनते थे। एक तरह से जनतंत्र की शिक्षा का यह लघुत्तम प्रयोग था। तिलमुष्टि जातक से पता चलता है कि तक्कसिला का अनुशासन अत्यन्त कठोर था और राजाओं के लड़के भी दोष उत्पन्न करने पर पीटे जाते थे। प्रत्येक उपोसथ वाले दिन पुण्यानुमोदन और पापदेशना कार्यक्रमों के माध्यम से छात्र अपने अच्छे और बुरे कार्यों के बारे में संघनायक अथवा महाथेर से कहते थे और यथानुकूल दण्ड का विधान भी किया जाता था ताकि विनय के विरुद्ध संघ में फूट न पड़े।

स्त्री शिक्षा

मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक सम्पर्क के कारण ही व्यक्ति समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, संस्कृति एवं सामाजिक गुणों को सीखकर उन्हें ग्रहण करता है। किसी भी समाज के विकास का मापदण्ड स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर है। समृद्धशाली और आदर्श समाज वही माना जा सकता है, जिसमें स्त्री और पुरूष को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त हो। बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश देकर विश्व इतिहास में लैंगिक समानता का अद्भुत उदाहरण पेश किया। जिस समय भारत में बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित था, उस समय भिक्खुणी संघों की भरमार थी। इन भिक्खुणी संघों में प्रविष्ट हो जाने पर एक स्त्री एक स्वतंत्र व्यक्ति बन जाती थी। वह किसी पुरुष की अनुचर मात्र बनकर नहीं रहती थी।[13] अम्बेडकर का मानना है कि तथागत द्वारा स्त्रियों को प्रदान की गई स्वतंत्रता खोखली स्वतंत्रता नहीं थी, अपितु ऐसी स्वाधीनता थी जिसका गौरव स्त्रियाँ अनुभव कर सकती थीं।[14] सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि[15]का उद्घोष कर मुत्ता थेरी मुक्त जीवन का उद्घार व्यक्त करती है। पटाचारा के उपदेश से प्रभावित हो भिक्खुणी बनी चन्दा थेरी स्वयं को तीनों विद्याओं अर्थात् बुद्ध, धम्म तथा संघ में निपुण मानते हुए समस्त चित्तमलों से विमुक्त होने की पुष्टि करती है।[16]

बौद्ध भिक्खुणी संघ के अपने मठ थे जिनमें विनय और सुत्त की शिक्षाएँ दी जाती थीं। बुद्ध के वचनों से प्रभावित होकर भिक्खुणी संघ में सम्मिलित होने वाली स्त्रियों में अञ्ञतरा, मुत्ता, पुण्णा, मित्ता, तिस्सा, धीरा, विसाखा, सुमना, धम्मा, सुमंगलमाता, चित्ता, मेत्तिका, सुक्का, सोमा, भद्दाकापिलानी, सुन्दरी नन्दा, पटाचारा, चन्दा, खेमा, उत्तरा, सीसूपचाला, किसागोतमी, अम्बपाली,

---

[13]नरसु, पी. लक्ष्मी, *दी एसेन्स ऑफ बुद्धीज्म (बौद्ध धर्म का सार)*, डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन(हि.अनु.),बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, द्वितीय संस्करण, 1997, पृ. 102

[14]अम्बेडकर, भीमराव, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009, पृ. 15

[15] *थेरीगाथा,*11

[16] *थेरीगाथा,*126

इसिदासी, सुमेधा इत्यादि अनेक नाम है, जिनमें से 73 भिक्खुणियों के उद्गार थेरीगाथा पालि ग्रन्थ में लिपिबद्ध हैं। ये केवल भिक्खुणियाँ मात्र ही न थी, अपितु पुरुष भिक्खुओं की भांति धम्मोपदेश भी देती थी। पटाचारा ने चन्दा इत्यादि अनेक भिक्खुणियों को प्रव्रजित किया। भरुकच्छ की वड्ढ ने अपनी थेरी वड्ढमाता के वचनों से प्रभावित होकर निर्वाण की प्राप्ति की।[17]धम्मदिन्ना जैसी तार्किक तथा दार्शनिक भिक्खुणी भी थी, जिसने राजा बिम्बिसार की शंकाओं का समाधान किया था। कुण्डलकेशा ने सारिपुत्त के साथ धर्मविषयक वाद-विवाद किया था। इसने अर्हत् पद भी प्राप्त किया था।

बौद्ध शिक्षा के गुण-दोष

बौद्ध शिक्षा व्यवस्था व्यक्तिवाद और भेदभाव के कारणों को दूर करते हुए संस्थागत विकास की ओर बढ़ती है। यदि बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के दोषों की बात करें तो इसमें आरम्भिक दौर में धार्मिक विचारों को महत्त्व ज्यादा दिया गया, लौकिक जीवन के विषयों की अनदेखी की गई और सैनिक प्रशिक्षण पर बात नहीं की गई किन्तु कालान्तर में संस्थागत शिक्षा व्यवस्था में सभी विषयों को स्वीकार करते हुए अध्यापित कराया जाने लगा। दर्शन, तर्क, न्याय शास्त्र के विभिन्न उपागमों के साथ शल्यचिकित्सा, आयुर्विज्ञान, ज्योतिष, गणित जैसे विषयों का भी पाठ्यक्रम के तौर पर अध्ययन का आरम्भ बौद्धों ने किया। शिल्प के विभिन्न विषयों को अध्यापन के दायरे में लाया गया ताकि कुशलता विकसित हो और बौद्धों का स्थापत्य सर्वत्र प्रसार पाए। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के केन्द्र में तथागत बुद्ध की देशनाएँ और उनका दार्शनिक स्वरूप एवं विश्लेषण ही प्रधान था किन्तु वैश्विक शान्ति, अहिंसा, प्रजातंत्र, शील एवं मूल्यपरकता, संस्थागत एवं सामान्य शिक्षा का आदर्श जैसे गुण स्वतः ही बौद्ध शिक्षा व्यवस्था से प्रसूत हुए।

[17] *थेरीगाथा,*204-12

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा व्यवस्था ने भारतीय जनमानस में ऐसी चेतना का विकास किया जिसने शिक्षण व ज्ञान प्राप्ति पर चले आ रहे वंशानुगत एकाधिकार को समाप्त कर दिया तथा जनमानस में शिक्षा के महत्व व माँग को बढ़ा दिया। स्त्रियों सहित न केवल भारतीय समाज वरन वैश्विक समाज के प्रत्येक वर्ग तक शिक्षा को सार्वजनीन बनाने के लिए बौद्धों ने प्रयास किये। धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा के साथ-साथ सांसारिक शिक्षा का आदर्श बौद्धों ने स्थापित किया और नालन्दा, विक्रमशिला सदृश संस्थाएँ बनाकर शिक्षा को संस्थागत स्वरूप दिया।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची</u>

- *खुद्दकपाठ-धम्मपद-उदानपाळि,* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, इगतपुरी: विपश्यना विशोधन विन्यास, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *थेरगाथा,*धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *थेरीगाथा,* विमलकीर्ति (अनु.), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण,2008.
- *दीघनिकायो (दुतियो भागो - महावग्गपाळि),* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, इगतपुरी: विपश्यना विशोधन विन्यास, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *मिलिन्दपञ्हो,* शास्त्री, द्वारिकादास (सं.), बौद्धभारती, वाराणसी, 1979.
- *विसुद्धिमग्गो (पठमो भागो),* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, इगतपुरी: विपश्यना विशोधन विन्यास, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- अम्बेडकर, भीमराव, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009
- अलतेकर, अनन्त सदाशिव, *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,* वाराणसी: नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, 1991.
- नरसु, पी. लक्ष्मी, *दी एसेन्स ऑफ बुद्धीज्म (बौद्ध धर्म का सार)*, डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन(हि.अनु.), बुद्द भूमि प्रकाशन, नागपुर, द्वितीय संस्करण, 1997
- बापट, पी.वी., *बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष,*दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, तृतीय संस्करण, 2008.
- सिंह, विकास, *मिलिन्दपञ्ह में भारतीय संस्कृति,* दिल्ली: विद्यानिधि, 2016.